

Chapter 2.

अधिगम का संज्ञानात्मक उपागम

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अधिगम का संज्ञानात्मक उपागम

2.4 अधिगम की संज्ञानात्मक अवधारणा

➤ सामान्यीकरण

➤ पुनर्संरचना

2.5 अधिगम के संज्ञानात्मक उपागम की विशेषताएँ

2.6 कक्षा के कमरे में क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन का स्थान

2.7 बान्द्रू का मॉडल द्वारा व्यावहार में रूपान्तर लाने का सिद्धान्त

2.8 प्रयोजनमूलक मनोविज्ञान के आधार पर टॉलमैन का सिद्धान्त

2.9 ब्रूनर का सिद्धान्त

2.10 औसुबेल का सिद्धान्त

2.11 पियाजे द्वारा प्रतिपादित अधिगम का संज्ञानात्मक उपागम

➤ आत्मसात्करण / समावेशीकरण

➤ समंजन

➤ साम्यधारण

➤ अनुकूलन

➤ पियाजे के संज्ञानात्मक उपागम की सीमाएँ

➤ शैक्षिक निहितार्थ

➤ पियाजे के संज्ञानात्मक उपागम की सीमाएँ

2.12 संज्ञात्मक तथा व्यवहारिक सिद्धान्तों की तुलना

2.13 बोध प्रश्न

2.14 सारांश

2.15 अभ्यास कार्य

2.16 बोध प्रश्न के उत्तर

2.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

खण्ड अ में आपने अधिगम के व्यवहारवाद उपागम को समझा अब खण्ड ब में आप अधिगम के संज्ञानात्मक उपागम को समझेंगे। एक अध्यापक के रूप में विद्यार्थी की अधिगम प्रक्रिया समझने के लिए उसके संज्ञानात्मक पक्ष को भी समझना आवश्यक है।

इस इकाई में संज्ञानात्मक उपागम की विशेषताएँ और सीमाओं की विवेचना भी की गई है। इसके साथ इनके सिद्धान्त भी बताये गये हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जाएंगे।

- संज्ञानात्मक उपागम को परिभाषित कर पायेंगे
- संज्ञानात्मक उपागम की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- इनकी विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- इस उपागम को कक्षा अध्यापन के लिए उपयोगिता की गहन समीक्षा कर सकेंगे।

2.3 अधिगम का संज्ञानात्मक उपागम

व्यवहारगत उपागम में अधिगम को विद्यार्थियों के प्रत्यक्ष व्यवहारों के रूप में देखा गया है जबकि संज्ञानात्मक उपागम में अधिगम को एक आन्तरिक मनोवैज्ञानिक वृत्ति जैसे अवबोधन

सम्प्रत्यय निर्माण ध्यान स्मृति तथा समस्या समाधान के रूप में समझा जाता है इस उपागम में विद्यार्थी सर्वप्रथम समस्या से सम्बन्धित सम्पूर्ण अवस्थिति/ वस्तु का अवबोधन करता है समस्या वस्तु के विभिन्न तत्वों में एक सम्बन्ध ढूँढता है और तत्पश्चात् समस्या के समाधान की कार्यनीति तैयार करता है।

- अधिगम एक प्रक्रिया है जिस के द्वारा संज्ञानात्मक संरचना में परिवर्तन अन्तर्निहित है।
- अधिगम के लिए संज्ञानात्मक प्रयत्न तथा बोधात्मक विवेक (समझ) की आवश्यकता होती है।

2.4 अधिगम की संज्ञानात्मक अवधारणा

संज्ञान शब्द की व्युत्पत्ति धातु से हुई है जिसका अर्थ है जानना अथवा अवबोधन करना। संज्ञानात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत इस बात की विवेचना की जाती है कि व्यक्तियों में स्वयं के प्रति तथा अपने वातावरण के प्रति विवेक किस प्रकार विकसित होता है और वे अपने वातावरण के वरिप्रेक्ष्य में कैसे कार्य करते हैं।

संज्ञात्मक सिद्धान्तवादियों के अनुसार अध्यापन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विद्यार्थी में विवेक या अन्तर्दृष्टि का विकास होता है। कक्षा सम्बन्धी अनुभवों को विद्यार्थी के व्यक्तिगत लक्ष्यों से सम्बन्धित कर दिया जाता है।

संज्ञात्मक उपागम अधिगम में बोध को बल व महत्व दिया जाता है। इस उपागम के अनुसार अधिगम एक जटिल प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप संज्ञानात्मक संरचना में परिवर्तन आ जाते हैं अर्थात् हम कह सकते हैं कि अधिगम संज्ञानात्मक संरचना में आया परिवर्तन है। सामान्य रूप से ये परिवर्तन तीन प्रकार की प्रक्रियाओं द्वारा आते हैं। ये प्रक्रियाएँ हैं :

(1) विभेदिकरण

(2) व्यापकीकरण

(3) पुनर्संरचनीकरण

विभेदीकरण में व्यक्ति पहले स्वयं के और अपने वातावरण के विशिष्ट पहलुओं में विभेदन करता है। उदाहरणार्थ: एक शिशु प्रत्येक महिला को अपनी मां समझता है। बाद में वह मां बहन व चाची ताई इत्यादि में भेद करना सीख जाता है। इस प्रकार संज्ञानात्मक संरचना अधिक विशिष्ट बन जाती है।

- **सामान्यीकरण** में मूर्त एवं विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं और इनके आधार पर बच्चे व्यापकीकरण अथवा सामान्यीकरण करना सीख जाते हैं। अवधारणाओं में भेद करके बच्चा विभेदीकृत अवधारणाओं का उनके विशिष्ट गुणों के आधार पर वर्गीकरण करता है। इस प्रक्रिया को सामान्यीकरण कहते हैं उदाहरण के लिए बच्चा पहले विभिन्न वस्तुओं जैसे मनुष्य स्त्री जन्तु पक्षी इत्यादि का अन्तर समझता है और तत्पश्चात् इन विभेदीकृत अवधारणाओं की एक व्यापक अवधारणा बना लेता है— जीवधारी। इस प्रकार विभिन्न अवधारणाओं का एकीकरण/व्यापकीकरण कहलाएगा
- **पुनर्संरचना:** जैसे –जैसे विभेदीकरण और व्यापकीकरण की प्रक्रिया घटित होती है व्यक्ति अपनी

संज्ञानात्मक संरचना पुनः व्यवस्थित कर लेता है और बच्चे की विभेदीकृत तथा सामान्यीकृत अवधारणाएँ समंजित हो जाती हैं। इनके द्वारा बच्चा स्वयं को तथा अपने वातावरण को बस में कर लेता है उदाहरण के लिए बच्चा सीख जाता है कि सभी जीवधारी मनुष्यों की भौति व्यवहार नहीं करते इस प्रकार जीवधारियों की यह अवधारणा हो जाती है

2.5 अधिगम के संज्ञानात्मक उपागम की विशेषताएँ

संज्ञानात्मक उपागम की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

- प्रारंभ में संज्ञानावादीयों ने अन्तर्दृष्टि पर अधिक बल दिया जबकि आज का संज्ञानवादी मनुष्य की मानसिक प्रक्रियाओं को अधिक महत्वपूर्ण समझता है। यह मन की तुलना कार्य करते हुए एक कम्प्यूटर से करता है।
- संज्ञानात्मक उपागम में अधिगम को एक सक्रिय व गतिशील प्रक्रिया मानता है।

- इस उपागम के अन्तर्गत विद्यार्थी के अवबोधनों का संसाधन विभेदीकरण समान्यीकरण तथा पुनर्संरचना द्वारा होता है। ये सभी प्रक्रियाएँ विद्यार्थी की उसके वातावरण के प्रति एक विशिष्ट संज्ञानात्मक संरचना प्राप्त करने में सहायक होती हैं।
- संज्ञानात्मक उपागम एक गतिक निकाय द्वारा निरूपित किया जाता है।
- विद्यार्थी के सदैव अपने कुछ उद्देश्य होते हैं और वे अपने लक्ष्यों (उद्देश्यों) के क्षेत्र में पारस्परिक क्रियाएँ करता है।
- यह उपागम समप्रत्यय (अवधारणा) निर्माण समस्या समाधान एवं उच्च मानसिक प्रक्रियाओं के संघर्ष में प्रभावी है।

2.6 कक्षा के कमरे में क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन का स्थान – कक्षा में बहुत-कुछ जो सीखना होता है वह क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन के सिद्धान्त द्वारा व्याख्येय हो सकता है। शिक्षक जो व्यवहार उन्हें पसन्द है उसका प्रबलन अपनी स्वीकृति द्वारा मुस्कराहट तथा अधिक अंक देकर करते हैं। क्योंकि शिक्षक प्रत्येक व्यवहार के लिए प्रबलता नहीं दे सकते हैं , विद्यार्थी अपने आप ही सही उत्तरों के प्रति अपने को प्रबलन देने लगते हैं। इस प्रकार बिना प्रत्येक बार शिक्षक को स्वीकृति या उसकी मुस्कराहट के विद्यार्थी अपने आप प्रबलन देना सीख लेते हैं। विद्यार्थी ऐसा सीखने के कारण ही मेहनत करते रहते हैं चाहे उन्हें तुरन्त कोई पुरस्कार मिले या न मिले, किन्तु बहुत बार ऐसा सीखने नहीं होता है: उदाहरण के लिए, जब विद्यार्थी यह समझने लगता है कि वह चाहे पढ़े या न पढ़े, उस पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है तो वह पढ़ने की ओर से उदासीन हो सकता है। इस कारण मेहनत करते रहने के लिए आवश्यक है कि शिक्षक प्रबलन समय-समय पर देता रहें, किन्तु एक ऐसी कक्षा में जिसमें बहुत-से विद्यार्थी हैं शिक्षक कैसे सब विद्यार्थियों को प्रबलन प्रदान कर सकता है। इस प्रश्न का उत्तर स्किनर महोदय प्रयोजनमूलक शिक्षक के रूप में देते हैं जिसके लिए वह शिक्षक मशीनों का उपयोग करते हैं।

प्रयोजनमूलक शिक्षक मशीनों का प्रयोग सर्वप्रथम सिडनी प्रेसी ने सन् 1926 में किया था, किन्तु उन्होंने किसी का ध्यान आकर्षित उस समय तक ही किया जबकि स्किनर ने ऐसे मॉडल तथा प्राग्राम बनाये जो आपरेन्ट सीखने के सिद्धान्त पर केन्द्रित थे मशीन विद्यार्थी के सम्मुख एक अपूर्ण कथन एक समय में रखती है। विद्यार्थी वह कथन पढ़ता है और वह शब्द या वाक्य का अंश लिख देता है जो उस कथन की पूर्ति कर देता है। फिर वह मशीन

में लगे यन्त्रको दबा देता है और सही उत्तर उसके सम्मुख आ जाता है। वह अपने उत्तर की तुलना उस सही उत्तर से करता है और फिर लीवर को दबाता है। अब अलग प्रश्न उसके सामने आ जाता है। इस विधि के पीछे यह विचार है कि सही उत्तर सीखने का पुष्टिकरण कर देता है और विद्यार्थी अगले प्रश्न को हल करने की चेष्टा करने के लिए अनुप्रेरित हो जाता है। प्रत्येक प्रश्न पहले वाले पर निर्मित होता है। इस प्रकार श्रृंखलाबद्ध रूप से सीखना होता है। प्रत्येक सही उत्तर तथा प्रत्येक अलग प्रश्न पहले वाले का प्रबलन कर देता है।

प्रोग्राम सीखना कक्षा के कमरे की समूह स्थितियों को व्यक्तिगत सीखने की स्थितियों में परिवर्तन करते हैं जिसमें विद्यार्थी स्वयं अपना प्रबलन एक शिक्षक मशीन पर सफल अनुभव पाकर करता है। यह इस कठिनाई को दूर कर लेता है कि कैसे प्रत्येक विद्यार्थी को प्रबलन दिया जा सकता है, किन्तु अन्य समस्याएँ प्रस्तुत हो जाती हैं पहली समस्या तो वह है कि पर्याप्त मात्रा में प्रोग्राम उपलब्ध नहीं है। जो विद्यालय के पूर्ण पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में हो। दूसरे यह कि अनुसन्धानों ने यह अन्तिम रूप से नहीं सिद्ध किया है कि स्किनर की विधि प्रेसी की विधि से अच्छी हलब्लिन (1965) ने अनेक विधियाँ एक प्रोग्राम पाठ्यक्रम में सीखने की पुष्टिकरण की प्रयोग की। उन्होंने पाया कि कोई ऐसा प्रबलन नहीं था जो सबसे उत्तम परिणाम दे। उन विद्यार्थियों ने, जिनमें स्वतन्त्र करने की दृढ़ आवश्यकताएँ थीं, बहुत निम्न प्रदर्शित किया। इससे अनुसन्धानकर्ता सोच में पड़ गया कि क्या त्रुटि रहित प्रोग्राम, जैसे कि स्किनर के हैं, वास्तव में इतने सरल हैं कि वे रोचक नहीं रहते। अनेक अन्य अनुसन्धानों में प्राग्राम शिक्षक के विरोध में तत्व मिले। जैसे रोडरिक क्या ऐडरसन² (1968) के अध्ययन में पाया गया कि जिन कालेज के विद्यार्थियों के साथ प्रारम्भिक मनोविज्ञान का ज्ञान देने के लिए प्राग्राम द्वारा सीखने का प्रयोग किया गया उन्होंने एक पाठ्यचरित्तु पर आधारित प्रश्नावली में उनसे अच्छी उपलब्धि प्रदर्शित नहीं की जिन्होंने केवल सारांश ही पढ़ा था। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि प्राग्राम सीखने में लगभग 4 गुना समय केवल सारांश पढ़ने में लगा। ऐसे अध्ययन हमारे अन्दर प्रोग्राम शिक्षण को और विकसित करने के लिए कार्य तेजी से हो रहा है। अब कम्प्यूटर सहाय शिक्षण की ओर भी विकास हो रहा है। यह सब विकास प्रोग्राम शिक्षण के महत्व को बढ़ा रहे हैं। है।

2.7 बान्दूरा का मॉडल द्वारा व्यावहार में रूपान्तर लाने का सिद्धान्त — अलबर्ट बान्दूरा उन

व्यवहारवादियों से सबसे अग्रणी है: जिन्होंने व्यवहार में मॉडल द्वारा रूपान्तर लाने पर बल दिया है। उनके अनुसार बहुत-कुछ व्यवहार जो रूपान्तरित हो सकता है उसमें शीघ्रता से यह रूपान्तर लाये जा सकते हैं यदि सीखने वाले के समक्ष एक मॉडल हो जो ऐसा व्यवहार कर रहा हो जैसा कि व्यवहार में रूपान्तर लाना है। मॉडल को देखकर व्यक्ति नये व्यवहार भी सीख जाता है जो कभी-कभी बहुत जटिल भी होते हैं। बान्दूरा के सिद्धान्त के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन 32वें अध्याय में देखें।

2.8 प्रयोजनमूलक मनोविज्ञान के आधार पर टॉलमैन का सिद्धान्त — टॉलमैन महोदय के

सिद्धान्त को हम मनोविज्ञान के प्रयोजनमूलक सम्प्रदाय के अन्तर्गत रखने हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, लक्ष्य का मुख्यमहत्व सीखने की क्रिया में है। कुत्ता सीटी सुनकर दौड़ना इसलिए सीख लेता है कि वह जानता है कि दौड़ने से उसे शीघ्र खाना मिल जायेगा और सीटी बजाना इस बात का संकेत है कि खाना तैयार है। अतएव खाना जो लक्ष्य है वह उसे जो कुछ भी ज्ञात है, उसको प्रयोग करने की प्रेरणा देता है। अतएव उसका दौड़ना यांत्रिक नहीं है वरन् उसके कुछ ज्ञान के आधार पर है। यदि कुत्ता भूखा नहीं होगा तो वह सीटी की आवाज सुनकर नहीं दौड़ेगा।

टॉलमैन के सिद्धान्त को **प्रतीक सीखना** भी कहते हैं। वह मानते हैं कि सीखना ज्ञानात्क मानचित्र बनाना है। एक चूहा जब प्रतिक्रियाएँ करता है। तो उसे अपने मार्ग का पता है, वह एक निश्चित व्यवहार के ढंग प्रबलन द्वारा नहीं सीखता। टॉलमैन के अनुसार पुरस्कार, दण्ड एवं अनुबन्धन वह प्रतीक है जो चूहे को बताते हैं कि अमुक रास्ता चुने, अमुक नहीं। वह ऐसे एजेन्टर हैं जो उससे सम्बन्धित कार्यों को करा दें या उन्हें रोक दें। टॉलमैन और हल के सिद्धान्त में मुख्य अन्तर यह है कि टॉलमैन के अनुसार एक उद्देश्य को प्राप्त करने में सीखने वाला प्रतीकों का अनुसरण करता है और वह अर्थ सीखता है जबकि हल, क्रिया सीखने पर बल देते हैं। कक्षा के वास्तवरण में टॉलमैन का सिद्धान्त अधिक अच्छा प्रतीत होता है। जब बालक कोई गणित का प्रश्न हल कर रहा है या साधारण कौशल सीख रहा है तो वह यह आत्म-संगठित क्रिया के कारण ही कर रहा होता है। यदि शिक्षक विद्यार्थी के व्यवहार में निरर्थक क्रियाएँ देखता है और उसे प्रयास एवं त्रुटि करते देखता है तो वह जानता है कि कुछ न कुछ दोषपूर्ण अवश्य है। बालक शायद सुरत

हो या पिछड़ा हुआ हो सकता है जो इस प्रकार की प्रक्रियाकरता है। प्रारम्भिक स्तरों के पश्चात् कक्षा सीखने की मुख्य विशेषता यही रही है कि इसमें सीखने में आत्म-संक्रियाएँ होती हैं। अन्त में हम कह सकते हैं कि टॉलमैन के सीखने का सिद्धान्त प्रारम्भिक सीखने में और कक्षा के जटिल सीखने में एक पुल की भाँति है।

2.9 ब्रूनर — ब्रूनर के सिद्धान्त के अनुसार, सीखना— सक्रिया रूप से सूचना का प्रक्रियाबद्ध करना है और संगठन और संरचना प्रत्येक व्यक्ति द्वारा है उसे संगठित करता है और इसे सूचना का संकलन अपने अनूठे ढंग से वातावरण के प्रतिमानों में करता है। अर्जित किये जाते हैं तथा संचित किये जाते हैं सक्रिय प्रत्याशाओं के रूप में न कि निष्क्रिय सम्बंधों में। और कुछ सीखना खोज के द्वारा होता है जो इस छानबीन के दौरान कौतूहल द्वारा अनुप्रेरित होता है। प्रत्यक्षीकरण संगठित होते हैं और सक्रिय रूप से अनुमानात्मक होते हैं। नये ज्ञान के रेखाचित्र विभिन्न वर्गों में खींचा जाता है ताकि यह तर्कपूर्ण रूप से नये ज्ञान के साथ सम्बन्धित हो जाये। अन्तिम ज्ञान से जब ज्ञान का चित्रण एक बड़ी संरचना में किया जाता है जो व्यक्ति का अपना निजी यथार्थता का मॉडल बन जाता है। इसमें बाहरी वातावरण का ज्ञान और साथ साथ आत्म सम्बंधी ज्ञान तथा व्यक्तिगत अनुभव सम्मिलित होते हैं जिससे सबका संगठन एक गेस्टाल्ट या पूर्ण इकाई में हो जाता है।

ब्रूनर ज्ञान के प्रस्तुतीकरण के सम्बंध में तीन पक्षों का वर्णन करता है। यह विचार पियाजे के विकासात्मक स्तर से मिलता जुलता है। हम इस सम्बंध में अध्याय 10 में वर्णन कर चुके हैं।

ब्रूनर के अनुसार, बुद्धि स्तर तथा आयु स्तर की ओर बिना ध्यान दिये हुए भी यह कहा जा सकता है कि सीस वाले अपने ज्ञान में विस्तार परिकल्पनाओं को बनाकर और उनका परीक्षण करके कर सकते हैं। यह सबसे अधिक स्पष्ट खोज अथवा अन्वेषण सीखने में होता है किंतु ब्रूनर का विश्वास है कि शिक्षको द्वारा सीधे सिखाये जाने वाले कार्यों में भी विद्यार्थियों को सक्रियता को अवबोधना प्राप्त करने में प्रोत्साहन देना चाहिए। ऐसा करने का मार्ग यह है कि विद्यार्थियों के समक्ष विभिन्न विचार पर्याप्त मात्रा में प्रस्तुत किये जायें। विभिन्न प्रकार से तर्क विभिन्न संप्रत्यय सम्बंधी उदाहरण प्रस्तुत किये जाने चाहिए।

ब्रूनर इस बात पर भी बल देता है कि शिक्षको को अवबोधन को बढ़ाने की भी चेष्टा करनी चाहिए। इससे तात्पर्य है कि अलग अलग ज्ञान के टुकड़ों को समन्वित अवधारणाओं में बांधना, सिद्धांतों को संगठित करना, कारण प्रभाव की व्याख्या करना और सीखने वाले को अन्य सहायक सामग्री जुटाना ताकि उनको यह समझने में सहायता मिल सके कि किस प्रकार से वस्तुएँ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं।

ब्रूनर सीखने को उद्देश्य केन्द्रित मानता है जो सीखने वाले की जिज्ञासा को सन्तुष्ट करता है। वह सीखने वाले को सक्रिय प्राणी मानता है जो अपनी सक्रियता द्वारा सूचना या ज्ञान का चयन करता है, रूप देता है, धारणा करता और इस प्रकार से परिवर्तित करता है कि कुछ निश्चित उद्देश्य प्राप्त हो जायें। ब्रूनर शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानात्मक विकास मानता है और वह इस बात पर बल देता है कि शिक्षा की अन्तर्वस्तु को समस्या हल की क्षमता खोज और अन्वेषण द्वारा बढ़ानी चाहिए।

ब्रूनर सीखने में स्वायत्तता पर बल देता है। वह सुझाव देता है कि जब विद्यार्थी को अन्वेषण की क्रिया द्वारा सिखने के लिये प्रोत्साहित किया जायेगा तो वह सीखने के लिए अधिक प्रयास करेगा। स्वायत्तता में उसे आनन्द आयेगा और सीखने की स्वतन्त्रता स्वयं में ही उसका भूमिका यह मानता है कि वह ऐसा वातावरण विद्यार्थियों के लिए निर्मित करें कि जिसमें विद्यार्थी अपने प्रयास से ही बिना किसी पूर्व निर्धारित सूचना की सहायता लिए हुए हैं सीखें। मूल्य निहित है और जिस ज्ञान की उसे आवश्यकता है वह वे अपने ही प्रयास से प्राप्त कर सकें।

2.10 औसुबेल

औसुबेल का एक ऐसा ज्ञान सिद्धान्त है जो व्यवहारवादियों से तो आमतौर पर विभेद रखता ही किन्तु बहुत-कुछ पियाजे और ब्रूनर से भी विभिन्नता प्रदर्शित करता है। यद्यपि वह यह मानता है कि खोज द्वारा सीखने में महत्वपूर्ण है, किन्तु वह यह भी स्पष्ट करता है कि कुछ दशाओं में यह अकुशल और यहाँ तक कि कहीं-कहीं यह नामुमकिन भी है। इसके साथ-साथ वह यह भी मानता है कि उपदेश शिक्षण पद्धति स्थितियों में सबसे सरल तथा सबसे कुशल सीखने की पद्धति है और परिणामस्वरूप वह यह मानता है कि इसे भी सीखने के लिए चुना जा सकता है।

औसुबेल विभिन्न प्रकार के सीखने में विभेद करता है। वह प्रतिरूप-विषयक सीखना अवधारणा सीखना प्रस्थापनीय सीखना अन्वेषण सीखना तथा समस्या हल में विभिन्नता स्पष्ट करता है। प्रतिरूप विषयक से तात्पर्य है — नाम शब्दों के अर्थ इत्यादि सीखना और प्रस्थापनीय से तात्पर्य है— अवधारणाओं की श्रेणियों तथा आपसी सम्बन्धों के बारे में सीखना। वास्तव में हम उसको सारग्राही कह सकते हैं क्योंकि वह विभिन्न स्थितियों में विभिन्न मार्ग अपनाने का प्रतिपादन करता है, किन्तु उसकी प्रसिद्धि उन अनुसन्धानों के कारण है जो कि उसने सीखने के अनुभवों की योजना बनाने की विधियों पर किये हैं ताकि सीखने में कुशलता प्राप्त हो सके।

औसुबेल इस बात पर बल देता है कि तथ्य सम्बन्धी ज्ञान उस समय सबसे सरलता से सीख लिया जाता है जबकि यह संगठित होता है और तर्कपूर्ण ढंग से क्रमशील कर दिया जाता है। इससे यह विचार निहित है कि कुछ समान्य सिद्धान्तों का प्रयोग जैसे कि सामग्री जो पूर्व —ज्ञान पर केन्द्रित है उस समय तक नहीं पढ़ाई जानी

2.11 पियाजे द्वारा प्रतिपादित अधिगम का संज्ञानात्मक उपागम

हाल के वर्षों में शिक्षा जगत में पियाजे के कार्य तथा विचारों की ओर अत्यधिक ध्यान गया है यद्यपि उसने कार्य लगभग पचास वर्ष पहले किया था।

पियाजे ने बच्चे के विकास और वृद्धि का अध्ययन किया। पियाजे का मुख्य उद्देश्य शैशवकाल से उारम्भ करते हुए प्रौढ़ावस्था तक मानव चिन्तन की प्रक्रिया को स्पष्ट करना है।

यां पियाजे द्वारा प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्तों के द्वारा बुद्धि ज्ञान तथा विद्यार्थी और उसके पर्यावरण के सम्बन्ध को पुनःपरिभाषित किया गया हैं। बुद्धि एक जैविक तन्त्र की भान्ति एक सतत् प्रक्रिया हैं। जिसमें संज्ञानात्मक संरचनाओं का निर्माण होतारहता है। वातावरण के साथ सतत् रूप से अन्योन्य क्रिया करने के उद्देश्य से बच्चे को बुद्धि की आवश्यकता हैं। इसी भाँति ज्ञान भी बच्चे और उसके वातावरण के मध्य अन्योन्य क्रियाओं का प्रतिफल हैं। शैशवकाल तथा पुर्व बाल्यकाल में ज्ञान अत्यधिक रूप से व्यक्ति-सापेक्ष होता और पूर्व प्रौढ़ावस्था में जाते जाते यह अधिक वस्तु-सापेक्ष या वस्तुपरक हो जाता हैं।

पियाजे का विश्वास है कि अधिगम कुछ प्रक्रियाओं का प्रकार्य हैं। ये प्रक्रियाएँ हैं :

आत्मसात्करण / समावेशीकरण

समंजन

अनुकूलन तथा

साम्यधारण

पियाजे द्वारा प्रतिपादित इस संज्ञानात्मक उपागम को भली भाँति समझने के लिए आइए इन सम्प्रत्ययों (प्रक्रियाओं) की विस्ता से विवेचना करें।

- आत्मसात्करण/समावेशीकरण : यह वह प्रक्रिया है जिसमें नए पदार्थों व अनुभवों का समावेश पूर्व विद्यमान संज्ञानात्मक योजना (स्कीमैटा) जो क्रियाओं का सुनिश्चित अनुक्रम हैं, में हो जाता है। ज्योंही किसी प्रक्रिया की मानसिक योजना विकसित होती है वह प्रत्येक नए पदार्थ तथा प्रत्येक अवस्थिति में लागू होती है। अनुभवों का समावेशन एक संज्ञानात्मक योजना के अनुक्रम के रूप में होता है। इसे समझने के लिए आइए जैविक समावेशन का उदाहरण लें और उसका संज्ञानात्मक समावेशीकरण से सादृश्य स्थापित करें। जब हम सामान्य भोज्य पदार्थ से कोई भिन्न भोज्य पदार्थ खाते हैं तो सम्भव है कि हम उसे पचा नहीं पाएं यदि पचा नहीं पाते हैं और उससे पेट सम्बन्धी कोई न कोई विकार उत्पन्न हो सकता है। और यदि हम उसे पचा लेते हैं तो वह हमारे विद्यमान जैविक ढाँचे में समावेशित हो जाता है। इस प्रकार भिन्न प्रकार का भोजन पचकर रक्त आदि में परिवर्तित हो जाता है। जब भोजन, पचकर समावेशित हो गया जो उससे हमारे जैविक ढाँचे को शक्ति मिली जिसके फलस्वरूप किसी और भोज्य पदार्थ को पचाने की शक्ति का विकास हुआ। इस सादृश्य की सहायता से हम संज्ञानात्मक समावेशीकरण प्रक्रिया को समझ सकते हैं। बाहर से प्राप्त कोई अवबोधन इत्यादि जब पूर्व विद्यमान संज्ञानात्मक ढाँचे द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है यह विद्यमान ढाँचे का भाग बनकर उसे शक्ति प्रदान करता है और उससे अन्य बाह्य अवबोधन प्राप्त करने की क्षमता बढ़ जाती है। इस प्रक्रिया के द्वारा हर नया प्राप्त अनुभव विद्यमान

संज्ञानात्मक योजना की क्षमता को बढ़ाता है और इस प्रकार संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया सतत् रूप से चलती रहती है।

➤ समंजन

समावेशीकरण के साथ साथ समंजन की क्रिया भी होती रहती है जिसमें व्यक्ति का वातावरण के साथ आमना-सामना होता है। समंजन से तात्पर्य है कि आन्तरिक ढांचे का स्थिति विशेष की विशिष्टताओं अथवा गुणों के सामंजस्य। उदाहरणार्थ: जैविक संरचना के सादृश्य में यदि हम एक विशेष प्रकार का भोजन छोड़कर दूसरे प्रकार का भोजन खने लग जाएं तो कुछ समय पश्चात् शरीर की आन्तरिक संरचना का सामंजस्य नए प्रकार के भोजन के साथ हो जाता है। इस प्रक्रिया को समंजन कहते हैं। इसमें संदेह नहीं कि समंजन का होना समावेशीकरण पर निर्भर करता है। अतः ये दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती हैं। समग्र विकास के परस्पर सम्बन्धित दो पक्ष हैं। जैसी जैविक ढांचे के संदर्भ में हुई उसी प्रकार की प्रक्रिया संज्ञानात्मक ढांचे में भी होती रहती है। किसी व्यक्ति का एक भिन्न संस्कृति या सम्यता के साथ समंजन उसी अवस्था में सम्भव है जब वह उस नई अवस्थिति के घटकों का समावेशीकरण का विकास होता रहता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति के आन्तरिक संज्ञानात्मक ढांचे का रूपान्तरण हो जाता है। उदाहरण के लिए जब किसी व्यक्ति के चिन्तनशैली और किसी दिये गए वातावरण की घटनाओं के मध्य विषंगति आती है तो व्यक्ति को अपनी चिन्तन विधि में परिवर्तन लाना पड़ता ताकि वह नए वातावरण की समस्याओं के साथ जूझ सकें। चिन्तनशैली का यह पुनर्गठन जो उच्च स्तर के चिन्तन में परिणत हो जाता है समंजन कहलाता है। जैसे-जैसे बच्चा वातावरण में नए अनुभवों को प्राप्त करता है वैसे-वैसे पूर्व स्थापित मानसिक योजना स्थाई नहीं रह पाती अपितु नए अनुभवों को आधार पर इसमें अपेक्षित रूपान्तरित हो जाएगा।

➤ साम्यधारण : संज्ञानात्मक विकास के संदर्भ में साम्यधारण वह स्व-नियामक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपना स्थायित्व बनाए रखने के साथ वृद्धि विकास व परिवर्तन प्राप्त करता रहता है। यह शक्तियों का संतुलन न होकर एक ऐसी गतिज प्रक्रिया है जो सतत् रूप से व्यवहार को नियमित करती रहती है। वस्तुतः यह समावेशीकरण और समंजन के मध्य संतुलन को बतती है। निरन्तर चलने वाली अन्योन्य क्रियाओं और निरन्तर हो रहे परिवर्तन के दौरान साम्यधारण के बिना

संज्ञानात्मक विकास में निरन्तरता एवं सम्बद्धता का अभाव होगा और यह इसके विपरीत विखण्डित व अव्यवस्थित हो जाएगा।

साम्यधारण नए और पुराने अनुभवों के मध्य संतुलन रखने वाला कार्य है। यह एक गतिज प्रक्रिया है जो असंगति को कम करती है।

➤ **अनुकूलन** : समावेशीकरण नई अनुभूतियों का विद्यमान तानसिक योजनाओं (स्कीमैटा) में समावेश करने में सहायता करता है जबकि समंजन के द्वारा पुराना स्कीमा (मानसिक याजनाएँ) नई अनुभूतियों के आधार पर परिवर्तित विस्तारित अथवा संयुक्त हो जाता है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति को इसके नए वातावरण के साथ में समन्जित होने में सहायता मिलती है। नए वातावरण के प्रति समन्जित होने की प्रक्रिया अनुकूलन कहलाती है। यह अनुकूलीकरण भी स्थाई नहीं है। जैसे-जैसे व्यक्ति अपना कार्य क्षेत्र परिवर्तित करता है वह बहुत सी संशोधित अन्विति योजनाएँ (स्कीमैटा) विकसित कर लेता है। अनुकूलन जीव और उसके वातावरण के मध्य होने वाली अन्योन्य क्रियाओं का प्रतिफल है जो व्यक्ति को (जीव को) अपने वातावरण से प्राप्त अनुभवों को व्यवस्थित अथवा संगठित करने में सहायता करता है। जीवन की घटनाओं के प्रति अनुकूलन प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अपने सभी अनुभवों और ज्ञान का समावेशीकरण विद्यमान संज्ञानात्मक ढांचों में करता है। सम्भवतः इस प्रकार वह अपने संज्ञानात्मक ढांचों को परिवर्तित करके समंजित हो जाता है। व्यक्ति नयों का पुराने के साथ समावेश करके तथा पुराने को नए के साथ समायोजित करके सीखता रहता है। अनुकूलन की यह प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है।

संज्ञानात्मक कार्यव्यपार के लक्षण वर्णन पर आधारित करते हुए (जो संगठन और अनुकूलन द्वारा निर्मित होता है) पियाजे महोदय बुद्धि की परिभाषा प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार बुद्धि कोई ऐसा स्थिर गुण नहीं है जो जीवन भर के लिए निश्चित कर दिया हो अपितु वातावरण के प्रति अनुकूलित करने वाली प्रक्रिया है। वातावरण की अवस्थितियों को अपने विद्यमान संज्ञानात्मक ढांचे में समावेशित कर लेता है अथवा अपने संज्ञानात्मक ढांचे को वातावरण की अपेक्षाओं के प्रति ढाल लेता है (समंजित कर लेता है) जो ये अपेक्षाएँ

प्रभावित होती हैं। पहली अवस्था में व्यक्ति का व्यवहार विद्यमान संज्ञानात्मक ढांचों द्वारा निर्धारित होता है और दूसरी अवस्था में व्यक्ति के संज्ञानात्मक ढांचे वातावरण के अनुसार परिवर्तित हो जाते हैं। इसका परिणाम है अनुकूलित व्यवहार अथवा बुद्धि। अनुकूलीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विद्यमान अवबोधन अधिगम व विवर्के और नई परिस्थिति नए अनुभवों व समस्याओं के मध्य साम्यधारण अथवा संतुलन प्राप्त करता है।

मानव की अपने आप व वातावरण के बीच सन्तुलन करते हुए जीवित रहने की वृत्ति अनुकूलन कहलाती है। पियाजे महोदय साम्यधारणा को एक गतिज तथा वृद्धि उत्पादक प्रक्रिया के रूप में समझाते हैं इससे पहले कि कोई बच्चा अगली मानसिक अवस्था को प्राप्त कर सकने योग्य बने उस पूर्वोत्तर मानसिक अवस्था पर साम्यधारण प्राप्त कर लेना आवश्यक है। अतः किसी जीव का अनुकूलन अतः इसकी वृद्धि उन समस्याओं और प्रक्रियाओं को स्पष्ट करते हैं जो बुद्धि अथवा ज्ञान के अनुकूलन में निहित है (पियाजे 1980)। में उन अवस्थाओं का विस्तृत वर्णन किया है जिनके अन्तर्गत कोई विशेष संज्ञानात्मक प्रकार्य विकसित होता है उन समय का भी जिस पर कोई विशेष अवधारणा प्राप्त हो सकती है।

इन संदर्भ में पियाजे ने चार अवस्थाएँ प्रतिपादित की जो इस प्रकार हैं:

संवेदी—प्रेरक अवस्था

पूर्व—संक्रियावस्था;

मूर्त—संक्रियावस्था; तथा

रूपात्मक संक्रियावस्था

प्रत्येक अवस्था इससे पूर्व अवस्था में आई बच्चे की उस मानसिक योग्यताओं में वृद्धि की परिचायक है जिसके द्वारा बच्चा अमूर्त रूप में सोच सकता है जगत के विषय में ठीक भविष्य कथन कर सकता है घटनाओं अथवा चीजों के ठीक ठीक कारण बता सकता है और सामान्यतः दुनिया के साथ बौद्धिक स्तर पर कार्य व्यापार कर सकता है।

- (1) **संवेदी प्रेरक अवस्था:** यह बच्चे के विकास की पहली अवस्था है। यह अवस्था लगभग जन्म से लेकर दो वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में बच्चे की संज्ञानात्मक योजनाओं में इस का दुनिया के विषय में अवबोधन (प्रत्यक्षीकरण) और वे समन्वयन सम्मिलित होते हैं जिनके द्वारा वह जगत के साथ बरताव करता है। यह वह अवधि है जिसमें बच्चा भौतिक जगत की प्रकृति के विषय में अपनी मूल संकल्पना बनाता है। वह यह सीखता है कि वस्तु जो लुप्त या अदृश्य हो गई है, दुबारा मिल सकती है। वह यह भी सीखता है कि अमुक वस्तु वही है जो किसी दूसरी तरफ से देखने अथवा भिन्न प्रकाश में अलग प्रतीत होती है। वह वस्तु के रूप-रंग, ध्वनि व स्पर्श का किसी अन्य वस्तु के इन्ही गुणों से सम्बन्ध स्थापित करता है। वह उन तरिकों को ढूँढ़ निकालता है जिनके द्वारा उसकी अपनी क्रियाएँ दूसरी वस्तुओं को प्रभावित करती है और इस प्रकार वह कारण-कार्य-सिद्धान्त का प्रारम्भिक भाव प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार उसकी नजर में दुनिया लगभग स्थाई वस्तुओं की एक बढ़ती हुई, कमबद्ध व्यवस्था है जो परस्पर व उसके अपने व्यवहार के साथ कारणात्मक रूप से जुड़ी है।
- (2) **पूर्व-संक्रियावस्था :** यह दूसरी अवस्था है और लगभग दो वर्ष के बीच मानी जाती है। इस अवस्था में बालक भाषा सीखे जाने के प्रभावों को दर्शाना आरम्भ करता है। वह वस्तुओं व घटनाओं को सांकेतिक अवस्था प्रतीकात्मक रूप से प्रदर्शित कर सकता है: अर्थात् मात्र वह उनके साथ क्रियाएँ ही नहीं करेगा अपितु उनके विषय में सोचेगा भी। वस्तुओं को शब्दों में अभिव्यक्त करने से पूर्व उसके मन में उसका आन्तरिक चित्रण होता है। ये आन्तरिक चित्रण बच्चे को बाह्य जगत के साथ अनुकूलित रूप से कार्य-व्यापार करने में अधिक नम्यता (लचीलापन) प्रदान करते हैं। और जब उन आन्तरिक चित्रण के प्रति उपयुक्त शब्द मिल जाते हैं तो उसमें सम्प्रेषण की शक्ति बढ़ जाती है। तथापि अभी उसकी बौद्धिक योग्यताएँ एक वयस्क की तुलना में काफी सीमित होती हैं। एक वयस्क व्यक्ति के मानदण्डों के आधार पर उसका चिन्तन निश्चित रूप से मूर्त होता है। उसकी प्रवृत्ति के अन्य पक्षों को अनदेखा कर मात्र एक पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करने की होती है। पियाजे महोदय ने इसे केन्द्रण (बमदजमतपदह) की संज्ञा दी। इस अवस्था के बच्चे की तर्कणा को तार्किक-दुःस्वप्न (सवहपबपंदे दपहीजउंतम) कहा जा सकता है। और उसे इस बात को

समझाने में कठिनाई होती है कि अन्य व्यक्ति वस्तुओं को उस रूप से अलग कैसे देख सकते हैं जिस रूप से वह देख रहा हैं। बच्चा अभी तार्किक वयस्क बौद्धिक संरचना प्रप्ति में काफी पीछे है।

- (3) **मूर्त-संक्रियावस्था:** इस अवस्था का विस्तार लगभग सात वर्ष से ग्यारह वर्ष तक की आयु तक फैला है। यह अवस्था नम्यता की दृष्टि से पूर्व-संक्रियावस्था से उँची है। इस अवस्था के अन्तर्गत आन वाली संक्रिया हैं वर्गीकरण संगठन अथवा संयोजन तथा तुलना करना। मूर्त संक्रियाओं की अवस्था में बच्चा शब्दों के पदानुक्रम के मध्य सम्बन्धों के साथ कार्य कर सकता है जैसे रॉबिन पक्षी जीव। वह संक्रियाओं की प्रतिवर्तित को समझता है जिसे पूर्व-संक्रियावस्था वाला बच्चा नहीं समझता। जैसे: जो जोड़ा है उसे घटाकर वही प्राप्त किया जा सकता है और जिस वस्तु की आकृति को बदल दिया गया है वह वस्तु मूल अवस्था में वापिस भी आ सकती है। इस अवस्था में कोई लड़की निम्नलिखित तर्क दोष अथवा तर्कभास की शिकार नहीं होगी जबकि पूर्व-संक्रियावस्था वाली आसानी से इसमें फँस जाती है। जैसे यदि वह कहे मेरी एक बहन है परन्तु उसकी कोई बहन नहीं हैं।

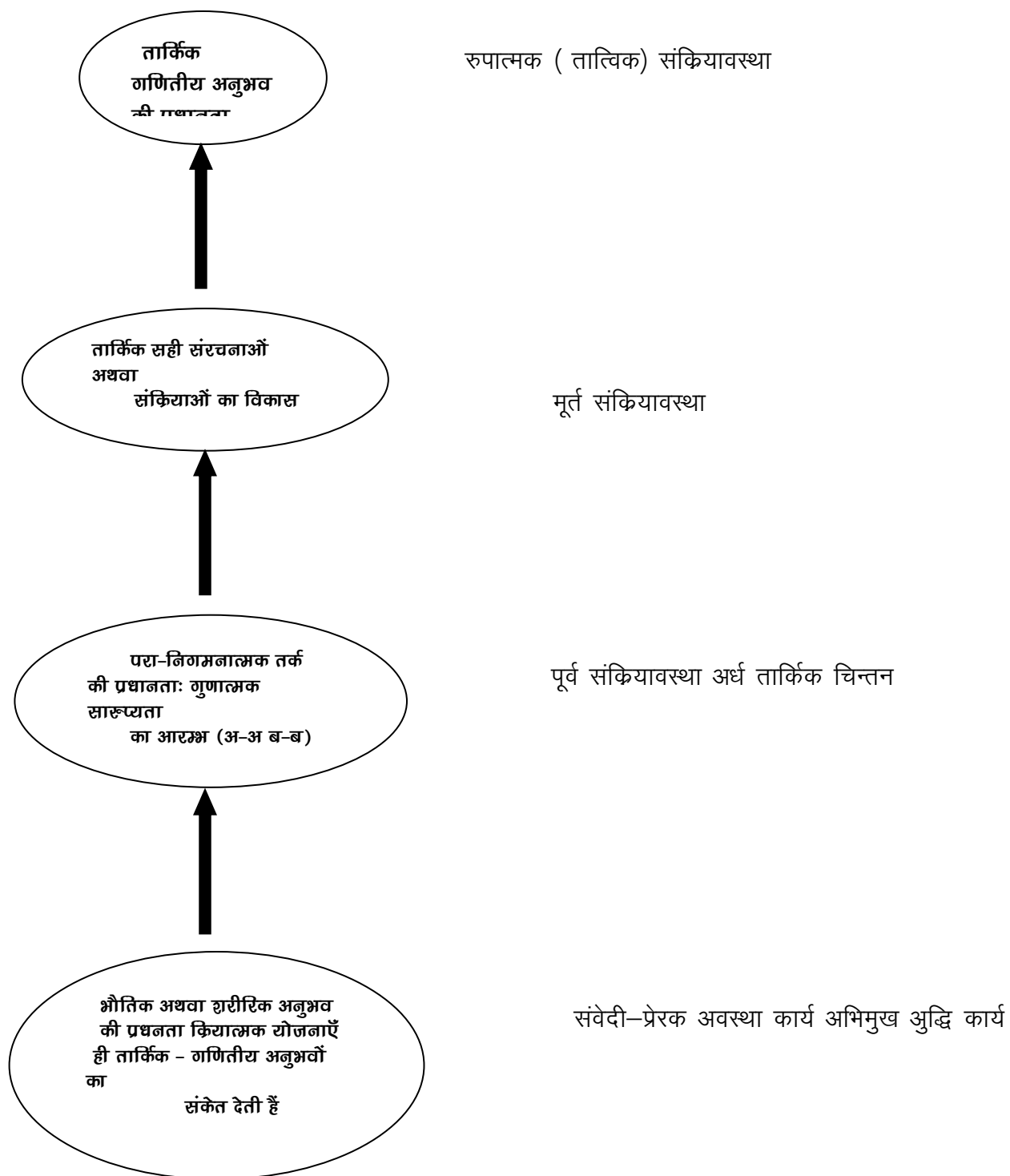
परन्तु पियाजे महोदय कहते हैं कि बात यही समाप्त नहीं होती। कोई बालक अंकगणितीय संक्रिया रट सकता है परन्तु सम्भव है आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग न कर पाए। दूसरी ओर बच्चा जिसने कभी अंकगणित सीखा ही नहीं है फिर भी वह अंकगणितीय प्रश्न/समस्याओं का ठीक उत्तर दे सकता है। वास्तव में विविध उदाहरणों से सीखना बच्चों को प्रतीकात्मक रूप से सीखने और बौद्धिक कार्य व्यापार करने के लिए सहायक है और महत्वपूर्ण भी ।

- (4) **रूपात्मक संक्रियावस्था:** चौथी और अन्तिम अवस्था लगभग ग्यारह वर्ष की आयु से आरम्भ होता है। इस अवस्था में लगभग सोलह वर्ष तक अमूर्त चिन्तन में परिशोधन अथवा वृद्धि होती रहती है। इस अवस्था में सांकेतिक परिचालन अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं। यद्यपि इससे पूर्व की अवस्था में बच्चे काफी तार्किक संक्रियाएँ करने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं परन्तु ये सभी संक्रियाएँ वे मूर्त अवस्थितियों के संदर्भ में ही कर पाते हैं। अब इस अवस्था में बच्चा (जो वास्तव में बौद्धिक रूप से बच्चा नहीं रहा) समस्याओं को अमूर्त रूप में अवलोकन कर सकता है। वह तार्किक चिन्तन की वैधता को आकारित या संकेतिक

संरचना के रूप में बिना किसी विषय वस्तु की उपस्थिति के सिद्ध कर सकता है अथवा पहचान सकता है। वह समस्या निर्माण के विभिन्न तरीके खोज सकता है और यह बता सकता है कि उनके तार्किक परिणाम क्या होंगे। कम से कम वह अमूर्त वाक्य कथनों के उस क्षेत्र में चिन्तन करने के लिए तैयार है जो उसकी यथार्थ दुनिया में काफी विस्तृत रूप में सही उतरते हैं। यह सम्भव है कि वह इन सभी प्रवृत्तियों को प्रत्येक अवस्थिति में प्रयोग में न ला सके। परन्तु वह उस अवस्था को प्राप्त कर सकता है। जहां पर वह ऐसा करने में सक्षम हो गया है। सांकेतिक तर्कणा का बौद्धिक साजोसामान जो मानव निष्पत्ति का आधार है कम प्रच्छन्न रूप में उसके अधिकार हैं।

यह सम्भव है कि सभी बच्चे दी गई आयु सीमाओं में इन संज्ञानात्मक अवस्थाओं में न आ सकें क्योंकि उसके घर और वातावरण अलग अलग होते हैं। पर पियाजे जिस बात पर बल देता है वह यह है कि बौद्धिक विकास में इन अवस्थाओं का अनुक्रम सभी बालकों के लिए वही रहेगा।

अगले पेज में चित्र द्वारा समझाया गया है(पेज 41)



उच्च शिक्षा स्तर पर हमारा अभिप्राय उन विद्यार्थियों से है जो चौथी अवस्था में अर्थात् आकारिक (तात्त्विक) अवस्था में हैं। अतः हमें इस अवस्था के विषय में अधिक जानकारी की आवश्यकता है।

आकारिक (तात्त्विक) संक्रियावस्था की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ नीचे दी गई हैं :

- इस अवस्था में विद्यार्थी बहुत सारी सम्भावनाओं का सर्वेक्षण करते हैं।
- वे ऐसे निकाय की अभिकल्पना करते हैं जो आनुमानिक रूप से या परिकल्पित रूप से सम्भव हो।
- वे एक काल्पनिक दुनिया के विषय में विचार करते हैं।
- वे अपने स्वयं के मानदण्डों की समीक्षा करते हैं।
- वे वाद विवाद करने के लिए कुछ पूर्व धारणाओं को स्वीकार कर लेते हैं।
- वे परिकल्पनाओं का निर्माण करते हैं उन पर विचार विमर्श करते हैं तथा उनकी जाँच करने के लिए अग्रसर होते हैं अथवा करते हैं।
- वे चीजों का व्यापकीकरण करते हैं।
- वे अपने स्वयं के चिन्तन विचारों निर्णयों अथवा कार्य को तर्काधार/ औचित्य प्रदान करते हैं।
- बड़े किशोर अथवा वयस्क अपने अहंभाव से ऊपर उठकर अपनी एक ऐसी आन्तरिक दुनिया का निर्माण करते हैं जो वस्तुनिष्ठ अथवा तटस्थ हो। वे वाह्य वस्तुओं के प्रभाव से भी ऊपर उठकर तटस्थ प्रेक्षक बनते हैं ताकि वे पूर्वधारणाओं व काल्पनाओं के विषय में तर्कणा प्रस्तुत कर सकें। अतः वे सामान्य नियम या सिद्धान्त स्थिपत कर सकते हैं।
- वे इस सीमा तक भी जा सकते हैं कि वे अपने प्रक्षणों के संदर्भ में अनुभवजन्य यथा तथ्य या गणितीय प्रमाण दे सकें।
- इस अवस्था पर चिन्तन निकटतम वर्तमान से परे जाते है और उनका प्रयत्न होता है कि अधिक से अधिक सीधे सम्बन्ध स्थापित करें।
- धारणाएँ विचार और अवधारणएँ रुपात्मक (तात्त्विक) होते हैं जिनका सम्बन्ध वर्तमान और भविष्य दोनों से होता है।

➤ पियाजे के संज्ञानात्मक उपागम की सीमाएँ

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास उपागम की कुछ सीमाएँ भी हैं। उनमें कुछ महत्वपूर्ण सीमाएँ नीचे दी गई हैं :

- पियाजे द्वारा प्रयुक्त शब्दावली काफी कठिन हैं और बहुधा विद्यार्थियों को स्पष्ट नहीं हो पाती
- वह असंख्य ज्ञान मीमांसात्मक विचारों में खोया प्रतीत होता है;
- पियाजे के सम्पूर्ण कार्यों में परम्परागत वैज्ञानिक प्रणाली का आभाव है
- उसका अधिक बल अवधारणाओं के सम्बन्धों को मालूम करने में है तथा संज्ञानात्मक अवधारणाओं की खोज पर नहीं;
- इसकी प्रक्रिया अथवा विधि लम्बी और अधिक समय लेने वाली है
- इसमें सीधा अध्यापन सम्मिलित नहीं है।
- गणित और विज्ञान का उपयोग पूर्ण बाल्यकान अवस्था में लागू नहीं हो सकता;
- बच्चे के लिए उसकी आवश्यकता अनुसार सटीक अभ्यास प्रश्नों का निर्माण करना अव्यावहारिक व अनावश्यक लगता है;
- बच्चों को अपने स्पष्टीकरण में विरोधों का पता नहीं चलता।
- इतने गहन रूप में चीजों का पता लगाने में बच्चा आत्मविश्वास और धैर्य खो सकता है;
- पूर्ण संक्रिया वाला बच्चा और मूर्त संक्रिया वाला भी अध्ययन के लिए तत्पर नहीं हैं क्योंकि अभी तक उसकी चिन्तन संरचनाएँ परिष्कृत नहीं है अर्थात् वे कच्ची हैं।

➤ शैक्षिक निहितार्थ

पियाजे के संज्ञानात्मक उपागम के कुछ प्रत्यक्ष/ अप्रत्यक्ष महत्वपूर्ण शैक्षिक निहितार्थ नीचे दिए गए हैं।

- पियाजे द्वारा प्रतिपादित संज्ञान प्रक्रिया का वर्णन (संज्ञान जो व्यक्ति और वातावरण के मध्य अन्योन्य क्रिया द्वारा समावेशीकरण और समंजन के फलस्वरूप होता रहता है) यह स्पष्ट करता है कि संज्ञानात्मक विकास जन्म से आरम्भ होकर वयस्कता तक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। इस सिद्धान्त के अनुसार संज्ञानात्मक विकास एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक एक क्रमित आरोही प्रक्रिया है। अध्यापक को चाहिए कि वह पहले अध्येताओं की विकास अवस्था का निर्धारण करें तत्पश्चात् अपने अनुदेश अथवा अध्यापन की योजना बनाए।
- शैक्षिक प्रणाली तथा बच्चे के मध्य सम्बन्ध पारस्परिक होता है।
- तार्किक चिन्तन के विकास में बाल्यकाल को एक महत्वपूर्ण व आवश्यक अवस्था के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।
- विज्ञान तथा गणित विषयों को क्रियाओं और संक्रियाओं द्वारा पढ़ाया जाना चाहिए ऐसी क्रियाएँ विद्यालय में नर्सरी कक्षा से मूर्त वस्तुओं के साथ अन्योन्य क्रियाओं व अनुभव से आरम्भ होनी चाहिए।
- उदारवादी कला और विज्ञान दोनों प्रकार के छात्रों के लिए प्रशिक्षण द्वारा प्रयोगात्मक प्रविधियाँ व स्वतंत्र कार्यकलाप पर आधारित करके चलाई जानी चाहिए।
- ऐसी सक्रिय विधियों का उपयोग करना चाहिए जिनके द्वारा विद्यार्थी से यह अपेक्षा की जाय कि वे यथार्थता की खोज अथवा इसका पुनर्निर्माण करेंगे। अध्यापक को भी चाहिए कि यदि विद्यार्थी जल्दबाजी में उत्तर देते हैं तो वह इस प्रकार प्रति- उदाहरण प्रस्तुत करें कि विद्यार्थी अपने उत्तर दुबारा सोचें।
- विद्यार्थी द्वारा यथार्थता की खोज के संदर्भ में श्रव्य-दृश्य साधन मात्र सहायक हो सकते हैं।
- समूह में परस्पर आदान-प्रदान की भावना जागृत अथवा विकसित करनी चाहिए।

- कक्षा में अधिगम के लिए विद्यार्थियों के छोटे समूह के लिए उनकी पारस्परिक रुचि की सहज क्रियाएँ प्रस्तुत की जानी चाहिए। तार्किक बुद्धि के विकास के उद्देश से कक्षा एक ऐसा केन्द्र हो जहाँ वास्तविक कार्यकलाप सामुहिक रूप से क्रियाओं व सामाजिक परिवर्तन के द्वारा चलें।
- यदि विद्यार्थी गलतियाँ करें तो उन्हें ऐसा अवसर दें कि वे अपनी गलतियों को पहचान सकें तथा स्वयं ही उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें। अतः कक्षा सम्बन्धी अनुदेश/शिक्षण इस प्रकार नियोजित हो कि उसमें रचना समावेशन व समंजन की प्रक्रियाएँ सुगम हो जाए ताकि भौतिक/अनुभवजन्य तथा अमूर्त व विमर्शक चिन्तन विकसित हो सकें।
- सभी अवस्थाओं पर विद्यार्थियों द्वारा प्रयोगीकरण की प्रक्रिया महत्वपूर्ण होती हैं। मात्र प्रयोगीकरण के द्वारा ही विद्यार्थी उन कौशलों की समप्राप्ति कर सकेगा जो रूपात्मक (प्रतीकात्मक) संक्रियात्मक चिन्तन के लिए आवश्यक हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रयोगीकरण के द्वारा प्रायः नए विचार उत्पन्न होते हैं। छोटे बालकों द्वारा दिए गए प्रथम नए विचार सम्भवतः एक वयस्क की दृष्टि में मौलिक न लगें। परन्तु ऐसे व्यवहार अथवा आदत से नए विचारों के निर्माण के लिए प्रोत्साहन मिलता है जिससे वे आगे चलकर मौलिक खोज करने में सक्षम होंगे। जितना हम बच्चों को उनके उन अद्भुत विचारों को प्रकट करने में सहायता करेंगे जिन्हें प्रकट कर वे अच्छा अनुभव करते हों उतना ही यह सम्भव है कि वे एक दिन ऐसे अनुपम व मौलिक विचार देने में सक्षम हो सकते हैं। जो पहले किसी ने भी न दिए हों।
- संज्ञानात्मक क्रिया कलाप जो प्रयोगीकरण द्वारा उत्पन्न हों अनिवार्य होता हैं। यद्यपि स बात को भी नहीं नकारा जा सकता कि एक बच्चा बिना भौतिक/शारीरिक कार्यकलाप के भी मानसिक रूप से सक्रिय हो सकता है तथा दूसरा शारीरिक कार्यकलाप करते हुए भी निष्क्रिय हो।
- पूर्व-विद्यालयी पाठ्यक्रम में बहुत से कार्यकलाप संज्ञानात्मक विकास के अवसर प्रदान कर सकते हैं। जैसे ब्लॉक पेन्टिंग फिंगर पेन्टिंग संगीत चेयरखेल कुकिंग ड्रामा इत्यादि में व्यस्त बच्चे तार्किक-गणितीय अमूर्त चिन्तन सीख सकते हैं।
- कक्षा में बच्चों को ऐसे अवसर प्रदान किए जाने चाहिए कि वे अपने ज्ञान का स्वयं निर्माण कर सकें ताकि वे विभिन्न संज्ञानात्मक अवस्थाओं पर दुनिया को नए रूप में समझ सकें।

- कक्षा में किए जाने वाले कार्यकलाप बच्चों को अधिकाधिक उन सम्बन्धों के निर्माण और उन्हें समन्वित करने के अवसर प्रदान करें जिनके करने की क्षमता बच्चों में हैं।
- पूर्व-विद्यालयी स्तर पर बच्चे अपने कार्यों के इन्द्रिय गोचर प्रभाव में अधिक रुचि रखत हैं न कि परिणमों को सुव्यवस्थित संज्ञानात्मक ढांचे से सम्बन्धित करने में।
- बच्चों को कई प्रकार के कार्यकलाप खेल और अनुभूतियों प्रदान की जानी चाहिए ताकी वे अपने विकासशील संज्ञानात्मक उपनिकायों को उपयोग में ला सकें। एक सुझाव यह है कि बच्चों को व्यक्तिगत रूप से गणित-प्रयोगशालाओं के उपयोग करने का अवसर दें जहा पर मापन तथा प्रयोगीकरण के लिए काफी उपकरण हों। उदाहरण स्वरूप इसमें अलग अलग प्रकार के ब्लाक सूखे मटर माचिस की डिब्बियाँ साफ्ट ड्रिंक पीने के लिये प्रयोग में लाए जाने वाली नली इत्यादि।
- ऐसे खेल और कार्यकलापों की आवश्यकता है जिनसे वर्गीकरण तथा श्रेणीबद्ध करना सीखा जा सके। वर्गीकरण प्रक्रिया सिखाने के लिए प्लास्टिक के ब्लाकों टुकड़ों अथवा ऐसी अन्य चीजों का प्रयोग किया जा सकता है जो कम से कम दो गुणों (जैसे रंग व आकार) में भिन्न भिन्न हों। उदाहरण के लिए विभिन्न रंग आकार व माप के वृत्तों वर्गों व त्रिभुजों का उपयोग विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। ताश के पत्तों के द्वारा रंग और आकार के आधार पर वर्गीकरण तथा पंक्तिबद्धता की योग्यता का विकास किया जा सकता है।
- अधिगम- अध्यापन को प्रभावी बनाने के लिए अभ्यास कराया जाना चाहिए।

पियाजे के संज्ञानात्मक उपागम की सीमाएँ

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास उपागम की कुछ सीमाएँ भी हैं। उनमें कुछ महत्वपूर्ण सीमाएँ नीचे दी गई हैं :

- पियाजे द्वारा प्रयुक्त शब्दावली काफी कठिन हैं और बहुधा विद्यार्थियों को स्पष्ट नहीं हो पाती;
- वह असंख्य ज्ञान मीमांसात्मक विचारों में खोया प्रतीत होता है;
- पियाजे के सम्पूर्ण कार्यों में परम्परागत वैज्ञानिक प्रणाली का आभाव है

- उसका अधिक बल अवधारणाओं के सम्बन्धों को मालूम करने में हैं तथा संज्ञानात्मक अवधारणाओं की खेज पर नहीं;
- इसकी प्रक्रिया अथवा विधि लम्बी और अधिक समय लेने वाली है
- इसमें सीधा अध्यापन सम्मिलित नहीं हैं।
- गणित और विज्ञान का उपयोग पूर्ण बाल्यकाल अवस्था में लागू नहीं हो सकता;
- बच्चे के लिए उसकी अवश्यकता अनुसार सटीक अभ्यास प्रश्नों का निर्माण करना अव्यावहारिक व अनावश्यक लगता है;
- बच्चों को अपने स्पष्टीकरण में विरोधों का पता नहीं चलता।
- इतने गहन रूप में चीजों का पता लगाने में बच्चा आत्मविश्वास और धैर्य खो सकता है;
- पूर्ण संक्रिया वाला बच्चा और मूर्त संक्रिया वाला भी अध्ययन के लिए तत्पर नहीं हैं क्योंकि अभी तक उसकी चिन्तन संरचनाएँ परिष्कृत नहीं है अर्थात् वे कच्ची हैं।

2.12 संज्ञात्मक तथा व्यवहारिक सिद्धान्तों की तुलना : संज्ञात्मक पक्ष के सैद्धान्तिक सीखने को प्रत्यक्षों और प्रत्यक्षीकरण का सक्रिय रूप से पुनर्गठन करना समझते हैं। वह इसे उत्तेजकों और प्रबलनों की निष्क्रिया प्रतिक्रिया नहीं मानते हैं। ज्ञानपक्षीय व्यवहारवादीयों द्वारा प्राप्त प्रदत्त सामग्री को स्वीकार करते हैं और यहाँ तक कि इस सामग्री को वह जो अनेक अर्थ प्रदान करते हैं उसे भी तान्यता देते हैं किन्तु फिर भी दोनों पक्षों में विभेद यह रहता है कि ज्ञानपक्षीय मानसिक अवधारणाओं का प्रयोग करना अधिकतर मानवों की अनूठी योग्यताओं पर बल देते हैं कि मानव की भाषा के प्रयोग करने की क्षमता तथा अनेक अन्य योग्यतायें जो उनमें और पशुओं में अन्तर व्यक्त करती हैं महत्वपूर्ण और मूल हैं और इस कारण ही व्यवहार के सामान्य नियम बनाना सम्भव नहीं हैं। वह मानव सीखने की ओर और विशेष रूप से अर्थपूर्ण सीखना जैसा कक्षा में होता है उस पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं।

यद्यपि भाषा सम्बन्धी योग्यतायें बालकों में पैदा होने के समय से ही होता है फिर भी ये योग्यतायें सीखने के प्रभावशाली यन्त्र छः वर्ष की आयु तक नहीं हो पाते हैं। अतएव ज्ञानपक्षीय सिद्धान्तवादी भी छोटे बालकों के सीखने में भाषा पर बहुत बल देते हैं। एक बार भाषा की योग्यतायें विकसित हो जाने पर ही भाषा के सीखने पर वह जोरदार बल देते हैं।

ज्ञान पक्ष वाले बहुधा सीखने को केवल सम्बन्ध स्थापित करने वाली प्रक्रिया ही नहीं समझते वरन् इससे भी अधिक इसे मानते हैं। वह यह कहते हैं कि प्रत्यक्षीकरण संगठित होता है और सीखना बहुधा यथावत् तथा सक्रिय होता है। अधिकतर सीखने में ज्ञान का सक्रिय रूप से प्रक्रियाकरण निहित होता है ताकि वह अर्थपूर्ण ढंग से संगठित हो सके और एक सामान्य एकांश की भाँति धारण किया जा सके। छोटी-छोटी सूचना अलग-अलग ढंग से संचय नहीं होती है। यह तो कमशील और अर्थपूर्ण ढंग से जमा होती है और सूचकबद्ध होती है।

ज्ञानपक्षीय सिद्धान्तवादी इस बात पर भी बल देते हैं कि बहुत-कुछ सीखना खोज से होता है क्योंकि व्यक्ति सक्रिय रूप से सूचना को प्रक्रियाबद्ध करने वाले होते हैं। वह लगातार नये तथ्य नये प्रत्यय एवं अवबोधना अपने प्रतिदिन की वातावरण के साथ प्रक्रियाओं में खोजते हैं। साधारणतः खोज द्वारा सीखना अधिक अर्थपूर्ण तथा मूल्यवान उस सीखने से होता है जो बाहरी रूप से थोप दिया जाता है।

ज्ञानात्मक सिद्धान्तवादी मानते हैं कि समय तथा संस्थान में एक साथ होना एवं दोहराना सीखने में महत्वपूर्ण तत्त्व हैं। वह पुष्टिकरण को भी ठीक समझते हैं किन्तु वह इसकी उस भूमिका को जो प्रतिक्रियाओं के सही होने के सम्बन्ध में जानकारी के लिए होती है अधिक महत्त्व का उस भूमिका से मानते हैं वो अनुप्रेरित करने की हैं। जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से प्रतीत होता है ज्ञानात्मक पक्षीय व्यवहारवादी प्रत्ययों को मान्यता तो देते हैं किन्तु साथ साथ मानसिक प्रक्रिया पर बल देते हैं।

2.13 बोध प्रश्न

- नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।
- इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजियें।

1 टॉलमैन के सिद्धान्त को संक्षिप्त में समझाएँ

.....

.....

.....

- 2 यदि आपको समस्या समाधान द्वारा अधिगम के समझना हो तो कौन सा उपागम उपयुक्त होगा और क्यों।

.....

.....

.....

.....

.....

- 3 पियाजे के संज्ञानात्मक उपागम की सीमाएँ

.....

.....

.....

.....

.....

2.14 सारांश

- संज्ञात्मक उपागम द्वारा अधिगम को एक आन्तरिक मनोवैज्ञानिक वृत्ति जैसे अवबोधन सम्प्रत्यय निर्माण ध्यान स्मृति तथा समस्या समाधान के रूप में समझा जाता है इस उपागम में विद्यार्थी सर्वप्रथम समस्या से सम्बन्धित सम्पूर्ण अवस्थिति/ वस्तु का अवबोधन करता है समस्या वस्तु के विभिन्न तत्वों में एक सम्बन्ध ढूँढता है और तत्पश्चात् समस्या के समाधान की कार्यनीति तैयार करता है। इस उपागम द्वारा बच्चों को कई प्रकार के कार्यकलाप खेल और अनुभूतियाँ प्रदान की जा सकती है शिक्षक खेल द्वारा विकासशील संज्ञानात्मक उपनिकायों को उपयोग में ला सकें।

2.15 अभ्यास कार्य

- 1) अपनी रुचि का कोई विषय लें और संज्ञानात्मक उपागम की वियोजीकरण, एकीकरण (व्यापकीकरण) तथा पुनः रचना सम्बन्धी प्रक्रियाओं को छोटे अथवा पहचानें।
- 2) अपनी कक्षा में विद्यार्थियों से आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए किन बातों की आवश्यकताएँ हैं यह नाट्य रुपान्तर द्वारा बच्चों को कक्षा में प्रस्तुत करने के लिये कहा जाए।

2.16 बोध प्रश्न के उत्तर

- 1 **प्रयोजनमूलक मनोविज्ञान के आधार पर टॉलमैन का सिद्धान्त** — टॉलमैन महोदय के सिद्धान्त को हम मनोविज्ञान के प्रयोजनमूलक सम्प्रदाय के अन्तर्गत रखने हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, लक्ष्य का मुख्यमहत्व सीखने की क्रिया में है। कुत्ता सीटी सुनकर दौड़ना इसलिए सीख लेता है कि वह जानता है कि दौड़ने से उसे शीघ्र खाना मिल जायेगा और सीटी बजाना इस बात का संकेत है कि खाना तैयार है। अतएव खाना जो लक्ष्य है वह उसे जो कुछ भी ज्ञात है, उसको प्रयोग करने की प्रेरणा देता है। अतएव उसका दौड़ना यांत्रिक नहीं है वरन् उसके कुछ ज्ञान के आधार पर है। यदि कुत्ता भूखा नहीं होगा तो वह सीटी की आवाज सुनकर नहीं दौड़ेगा।
- 2 संज्ञानात्मक उपागम समस्या समाधान के लिए उपयोग होगा। समस्या के अवबोधन में एकात्मीयकरण अथवा अभिज्ञान, समावेशीकरण तथा पुनर्रचनाकरण सम्मिलित होते हैं। संज्ञानात्मक उपागम में यह सभी बहुत सारे अन्य सम्प्रत्यय सम्मिलित होते हैं।
- 3 **पियाजे के संज्ञानात्मक उपागम की सीमाएँ**
पियाजे के संज्ञानात्मक विकास उपागम की कुछ सीमाएँ भी हैं। उनमें कुछ महत्वपूर्ण सीमाएँ नीचे दी गई हैं :
 - पियाजे द्वारा प्रयुक्त शब्दावली काफी कठिन हैं और बहुधा विद्यार्थियों को स्पष्ट नहीं हो पाती;
 - वह असंख्य ज्ञान मीमांसात्मक विचारों में खोया प्रतीत होता है;
 - पियाजे के सम्पूर्ण कार्यों में परम्परागत वैज्ञानिक प्रणाली का आभाव है

- उसका अधिक बल अवधारणाओं के सम्बन्धों को मालूम करने में हैं तथा संज्ञानात्मक अवधारणाओं की खेज पर नहीं;
- इसकी प्रक्रिया अथवा विधि लम्बी और अधिक समय लेने वाली है
- इसमें सीधा अध्यापन सम्मिलित नहीं हैं।

➤ 2.17 कुछ उपयोगी पुस्तके

Chauhan S.S. (1988): Advanced Educational Psychology, Vikas Publications, New Delhi.

Kulshreshtha, S.P. (1994): Assessing the Non –Scholastic Behaviour of Learners, Association of Indian Universities, New Delhi.

Mathur, S.S. (18994): Educational Psychology, loyal book Depot, Meerut.

Sharma, K.N. (1990): Systems, Theories and Modern Trends in Psychology, H. P. B. Agra.

Entwistle, Noel (1985): New Directions in Educational Psychology- Learning and Teaching, The Falmer Press, London & Philadelphia.

Gredler- Bell, E. Margaret (1986): Learning and Instruction: Theory and Practice, Macmillan Publishing Company, New York, Collier Macmillan Publishers, London.

Woolfolk, E. Anita (1987): Educational Psychology, Prentice Hall International (UK) Limited, London.

Bigge, L. Morris (1982): Learning Theories for Teachers, Harper & Row Publishers Inc, 10, East 53rd Street, New York.